समयसार, गाथा ३४। शिष्य अपना स्वरूप गुरु-मुख से सुनकर अपना आत्मा, राग से भिन्न है — ऐसा आत्मा का अनुभव-सम्यग्दर्शन हुआ। ज्ञाता वस्तु, वह मैं हूँ - ऐसी दृष्टि में ज्ञातापने की प्रतीति की। आत्मा में आनन्द के अंश का वेदन भी आया, वह शिष्य अब। — ऐसा पूछता है कि सम्यग्दृष्टि है अनुभवी है, आहाहा! प्रभु! मेरे स्वरूप का आचरण किस प्रकार हो? मेरे स्वरूप में आचरण-सम्यग्दर्शन है, अनुभव है, परन्तु अभी आचरण में शुभ-अशुभराग आचरण में पड़ा है। समझ में आया? शुभ-अशुभराग-दुःख, वह आचरण में है। शिष्य को सम्यग्दर्शन-अनुभव होने पर भी, रागादि आचरण में है, पर्याय में राग का — पुण्य-पाप का आचरण है, वह ऐसा कहता है कि प्रभु! मेरा स्वरूप मैंने जाना, उसका आचरण करने का मैं इच्छुक हूँ तो प्रभु! मैं आपको पूछता हूँ... आहाहा! सम्यग्दृष्टि, सम्यग्ज्ञानी है। सब भान है तो भी प्रभु भगवन्त.... ऐसा कहते हैं प्रभु! मेरे आत्मा का आचरण किस प्रकार हो? — ऐसा मैं पूछता हूँ। आहाहा!

उसका अर्थ? — कि सम्यग्दर्शन-आनन्द का अनुभव हुआ होने पर भी, स्वरूप का आचरण अभी नहीं है — जो स्थिरता होनी चाहिए, वह नहीं है। इस कारण शिष्य को प्रश्न उत्पन्न हुआ। प्रभु! मुझे मेरे आनन्द के नाथ ज्ञातावस्तु में आचरण करने का मैं

अभिलाषी हूँ। आहाहा! तो इस रागादि आचरण का त्याग कैसे हो? आहाहा! ऐसा है। सम्यग्दृष्टि है-अनुभवी है। आहाहा! वह भी अपनी पर्याय में अव्रत का-राग-द्वेष का आचरण देखकर... आहाहा! मेरी पर्याय में, प्रभु! दुःख का आचरण है। आहाहा! ऐसा सम्यग्दृष्टि - ज्ञानी, गुरु से कहता है। आहाहा! प्रभु! तो उस मेरे स्वरूप में अब आचरण कैसे हो? यह राग, द्वेष और दुःख का आचरण है, उसका त्याग/अभाव कैसे हो? यह मैं पूछता हूँ प्रभु! आहाहा! यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि सम्यग्दर्शन और ज्ञान हुआ तो उसको दुःख है ही नहीं... वह ज्ञान नहीं, मिथ्याज्ञान है, दृष्टि मिथ्यात्व है। ऐसी बहुत कठिन बातें हैं बापू! समझ में आया? क्योंकि भगवान आत्मा... आहाहा! ज्ञाता का नमूना सम्यग्दर्शन में हुआ। समझ में आया? मैं आनन्द हूँ, ज्ञान हूँ, मैं वीतरागमूर्ति प्रभु हूँ — ऐसी पर्याय में भी वीतरागी सम्यग्दर्शन वीतरागी सम्यग्ज्ञान; शास्त्रज्ञान नहीं, वीतरागी स्वरूप-आचरण का अंश प्रगट हुआ है, वह अब अपने शुद्ध स्वरूप में विशेष आचरण करने का इच्छुक... आहाहा! और राग तथा दुःख की पर्याय का त्याग करने का इच्छुक; परवस्तु का त्याग-ग्रहण तो यहाँ है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? मार्ग बहुत (अलौकिक है) भाई! आहाहा!

शिष्य को उत्तर देते हैं 'यतो हि' शब्द है न भाई? यतो हि का अर्थ 'यह' किया है न? यह 'यह' इसका अर्थ है न? गुजराती में 'आ' है? उसमें यह अर्थ तो 'हि' का ठीक है।

'यतो हि' संस्कृत में है न? 'यतो हि' संस्कृत है। यह है न? यह - यह संस्कृत में 'यतो हि' ३४ गाथा-टीका। शिष्य क्या कहते हैं, उसका उत्तर गुरु क्या कहते हैं? आहाहा! यह भगवान आत्मा, आहाहा! यह भगवान आत्मा 'यह' ऐसी दृष्टि में अनुभव में तो प्रत्यक्ष आया है। आहाहा! मति-श्रुतज्ञान प्रत्यक्ष होकर यह आत्मा (शिष्य को) जानने में आया है। समझ में आया? यह भगवान आत्मा ज्ञाता... आहाहा! गुरु कहते हैं कि यह भगवान आत्मा.... आहाहा! इसे भगवन्त कहा 'भगवत ज्ञातृ द्रव्यं' संस्कृत, संस्कृत में 'यतो हि' 'भगवत ज्ञातृ द्रव्यं' पहला शब्द यतो हि लिया संस्कृत में से 'यह' — फिर अन्त में 'भगवत ज्ञातृ द्रव्यं' आहा! संस्कृत में है, उसकी टीका है। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य के श्लोक (गाथायें) हैं। उनकी अमृतचन्द्राचार्य टीका करते हैं, उसका यह हिन्दी

अनुवाद था। यह अनुवाद बाद में गुजराती हुआ। अभी अपने हिन्दी चलता है। आहाहा! 'यह' **यह भगवान ज्ञाता-द्रव्य....** आहाहा! चाहे तो स्त्री हो, बालक हो, चाहे तो पुरुष राजकुमार हो, आहाहा! वह अपने आत्मा में आचरण करने का अभिलाषी, आहाहा! मेरा द्रव्य 'यह' ज्ञाता भगवन्त, ज्ञाता द्रव्य, नजर में आया भगवन्त ज्ञाताद्रव्य। निमित्त मैं नहीं राग-द्वेष मैं नहीं पर्याय में नहीं, यह तो ज्ञाता, यह ज्ञाता। आहाहा! ज्ञाताद्रव्य अर्थात् आत्मा है। यह भगवान ज्ञाताद्रव्य प्रभु है — ऐसी बातें हैं। यह **यह भगवान ज्ञाता-द्रव्य (आत्मा) है...**

यह **वह अन्य द्रव्य के स्वभाव से होनेवाले अन्य समस्त परभावों को,....** आहाहा! कर्म के निमित्त से अपने में-पर्याय में होनेवाले अन्य समस्त परभाव-शुभाशुभभाव आस्रव, विकारीभाव... आहाहा। सम्यग्दृष्टि को भी विकारीभाव इस पर्याय में है — ऐसा बताना है। आहाहा! और उसे विकारी का वेदन भी है। आहाहा! तो कहते हैं कि **वह अन्य द्रव्य के स्वभाव से होनेवाले....** यह पुण्य और पाप, काम और क्रोध जो विकल्प हैं, वह स्वद्रव्य का स्वभाव नहीं है। पर्याय में विभावरूप, अन्य द्रव्य के निमित्त से उत्पन्न होनेवाला विभाव है। समझ में आया? **वह अन्य....** 'यह' यह भी कहा, हों! 'यह' है ऐसा, जैसे यह है, यह ज्ञाता भगवान द्रव्य है 'यह' **अन्य द्रव्य के स्वभाव से होनेवाले....** 'हैं' ऐसा कहते हैं। पर्याय में, अवस्था में राग-द्वेष 'यह' अन्य द्रव्य के निमित्त से होनेवाला भाव मेरी पर्याय में है। आहाहा! ऐसी बातें कठिन, अरे!

वह अन्य द्रव्य के स्वभाव से होनेवाले अन्य समस्त परभावों को,.... आहाहा! चाहे तो तीर्थंकर गोत्र बाँधे — ऐसा शुभभाव हो, आहाहा! परन्तु वह तो अन्य भाव-विभावभाव है। आहाहा! यह अन्य द्रव्य के स्वभाव से होनेवाला (विभावभाव...) यहाँ द्रव्यस्वभाव नहीं है - ऐसा बताना है; पर्याय में होता है परन्तु अन्य के निमित्त के कारण होता है। है अपनी पर्याय में, अपने कारण से। परन्तु अपना स्वभाव है, यह विभावरूप परिणमन का कारण है ही नहीं। यहाँ 'यह' लेना है न? वह स्वभाव जो भगवन्त ज्ञाताद्रव्य है, वह तो है। इसकी पर्याय में द्रव्यस्वभाव से यह (विभाव) परिणमन नहीं है, अन्य द्रव्य के स्वभाव से विकारी विभावभाव दुःखभाव मेरी पर्याय में है।

श्रोता : कौन कहता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : समकिती कहता है। यह गुरु इसे कहते हैं। समझ में आया?

इन परभावों को-पुण्य और पाप... जिस भाव से स्वर्ग मिले, जिस भाव से तीर्थंकर प्रकृति बँधे, जिस भाव से आहारकशरीर आदि का बन्ध हो, वह सब भाव, परभाव, विभावभाव, दुःखभाव, आकुलतारूप भाव है। आहाहा! समझ में आया? **समस्त परभाव...** इसमें कोई बाकी नहीं, विकल्पमात्र चाहे तो तीर्थंकर गोत्र का भाव हो, वह भी विकार है, विभाव है, दुःख है, आहाहा! अपराध है। जिस भाव से तीर्थंकर गोत्र बँधता है, वह भाव अपराध है। षोड्श कारणभावना-यह आता है न? पुरुषार्थसिद्धिउपाय में लिखा है, वह अपराध है। आहाहा! वह अपना स्वभाव नहीं; अपराध उत्पन्न होता है पर्याय में। आहाहा! और अपराध का बन्ध होता है न? अपराध से भावबन्ध होता है न? अपराध के कारण (बन्ध होता है)। निरपराधी स्वभाव से बन्ध होता है? आहाहा! वह **अन्य समस्त....** अन्य समस्त-चाहे जितना विकल्प शुभ आदि हो, आहाहा! यह **अन्य समस्त परभावों को, उनके अपने स्वभावभाव से व्याप्त न होने से....** भाषा देखो! ऐसा कि अपना स्वभावभाव जो ज्ञाता-दृष्टा-आनन्द है — ऐसे स्वभाव से व्याप्त न होने से, इस अपने स्वभावभाव से विभावभाव ज्ञात न होने से... समझ में आया? आहाहा! ऐसा मार्ग भाई! साधारण प्राणी को कहाँ जाना बापू? इसके बिना जन्म-मरण नहीं मिटेगा भाई! आहाहा!

श्रोता : अपनी पर्याय में होता है, फिर भी व्याप्य-व्यापक नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : अपनी पर्याय में होनेवाला, पर से नहीं, पर के कारण से नहीं, परन्तु अपनी पर्याय में होनेवाला। है, उसको त्यागना है न? उसको छोड़ना है न? पर (चीज) छूटी हुई है, उसको छोड़ना क्या? अपनी पर्याय में राग-द्वेष आकुलता का भाव पर्याय में है परन्तु आत्मा अपने स्वभाव से परभावरूप व्याप्त न होने से — स्वभाव से विभावरूप नहीं होता। आहाहा!

देखो, यह आसोज शुक्ल एकम् है आज मंगल दिन है। आहाहा! रामचन्द्रजी जब रावण को मारते हैं, वह दशेरा, दशहरा कहते हैं न? सिर तो एक ही था परन्तु हार बहुत कीमती, बहुत अरबों रुपये की कीमत के हार के कारण दिखे ऐसे दस सिर दिखते... आहाहा! वह सीताजी को ले गया। सीताजी भी ज्ञानी समकिती; रामचन्द्रजी धर्मात्मा,

समकिती, आहाहा! वह सीताजी को लेने को गये, वहाँ रावण ने लक्ष्मण को विद्या लगायी, रावण ने विद्या (मारी)। आहाहा! अभी अव्रत है न, रागभाव है न? रामचन्द्रजी उस भव से मोक्ष जानेवाले हैं। गलीचा ऐसा पड़ा है रथ में, करोड़ों मनुष्य, क्या कहलाता है वह? लश्कर, बड़ा पण्डाल, करोड़ों मनुष्य। उसने (रावण ने) विद्या डाली है। आहाहा! देखो, सम्यग्दृष्टि-ज्ञानी-अनुभवी, लक्ष्मण को कहते हैं... यह तो हम दुकान पर सब चलते थे, दुकान पर यह गाते थे — चौंसठ, पैंसठ, छयासठ की साल में — 'आव्या ता त्यारे तृण जणा णे जासु एकाएक' रामचन्द्रजी लक्ष्मण को कहते हैं, ज्ञानी हैं। गुजराती भाषा में है। 'आव्या ता त्यारे तृण जणां णे जासु एकाएक, ए माताजी खवरूँ पूछशे बंधव सु सु जवाब देइस, लक्ष्मण जागने ओ जीव, बंधव बोल दे एक बार रे।' सुमेरुमलजी! यह रामचन्द्रजी ज्ञानी-अनुभवी... आहाहा! परन्तु अभी गृहस्थाश्रम में हैं, राग है न? राग का वेदन है न? आहाहा! हे लक्ष्मण! प्रभु! हम तीन जनें आये थे वन में। वह सीता गयी और तू भी इस (मूर्च्छा में) पड़ा, भाई! मैं अकेला जाऊँगा तो माता पूछेगी — भाई! तुम तीन गये थे, तू अकेला वापस आया? हे बंधव! एक बार बोल, एक बार बोल। कहो बालचन्दजी! देखो यह समकिती अनुभवी... आहाहा! प्रत्याख्यान नहीं न? अभी स्वरूप का चारित्र नहीं। आहाहा!

और फिर भी लक्ष्मण जागते हैं, उस बाई (विशल्या) के कारण सचेत होते हैं। एक बाई है न? शास्त्र में बड़ा लेख है, विशल्या नाम की राजकुमारी है, वह पूर्व में चक्रवर्ती की पुत्री थी, फिर विद्याधर उसे (हरकर जंगल में ले गया था)। जंगल में उसको अजगर निगल गया था। अज अर्थात् बकरा, गर अर्थात् गले (निगले) वह अजगर। बकरा, अज अर्थात् बकरा। उसको अजगर कहते हैं न? अज अर्थात् बकरा - बकरे को निगले, वह अजगर लम्बा, २५ हाथ का लम्बा था। उस कन्या को विद्याधर ने जंगल में छोड़ दिया था। उसे अजगर निगल गया। थोड़ा (हिस्सा) बाकी रहा था मुँह, उसमें उसका पिता-चक्रवर्ती ढूंढ़ते-ढूँढते वहाँ आया। अरे! यह क्या? अजगर को मारने के लिए बाण उठाया। कन्या कहती है — पिताजी! मत मारो, मैंने तो आहार का त्याग कर दिया है। अजगर के मुख में है, थोड़ी बाहर थोड़ी अन्दर। आहाहा! पिताजी मत मारो, मैं निकलकर आहार नहीं ले सकती। मुझे तो आहार का त्याग है। आहाहा! उसकी देह छूट गयी, राजा की कुँवरी

रूप से विशल्या नाम की (पुत्री) हुई परन्तु उसको ऐसी लब्धि हुई, आहाहा! लक्ष्मणजी विद्या के वश हैं, कोई कहता है विशल्या को लाओ, वह विशल्या आयेगी तो जागृत हो जायेंगे। कहो, वह विशल्या जहाँ आती है, जहाँ पाण्डाल में प्रवेश करती है, वहाँ लाखों घायल जीव थे, घायल; ठीक हो जाते हैं। साझा (गुजराती शब्द) समझते हैं न? (श्रोता : हाँ, तैयार) जब वह लक्ष्मण के समीप आती है, ऐसे लक्ष्मण जाग जाते हैं और बोलते हैं — कहाँ गया रावण? रावण को मारने का विकल्प... कहाँ गया रावण? उठकर लड़ाई करते हैं। रावण को छेद डालते हैं। आहाहा! फिर भी वे रामचन्द्रजी और लक्ष्मण महापुरुष हैं न! आहाहा!

उसे मारकर मन्दोदरी — रावण की स्त्री (रानी) के समीप जाते हैं (और कहते हैं) बा, बहिन, माता! हम ऐसी वासुदेव और बलदेव की पदवी लेकर आये हैं; इस कारण यह हुआ है। मेरा कोई विरोधी नहीं था परन्तु इस पदवी के योग्य यह काम किया है। देखो! समकिती ज्ञानी! आहाहा! वह मन्दोदरी विधवा हो जाती है, इसलिए वहाँ जाते हैं। माता, बहिन! हम इस पदवीधर हैं, इस कारण यह काम हुआ, बहिन! आहाहा! माफ करना। आहाहा! वे भाई रावण को जलाने के लिए ले जाते हैं, प्रभु! रामचन्द्रजी और लक्ष्मण साथ में जाते हैं। ऐ सुमेरुमलजी! देखो तो सही इतिहास! आहाहा! समकिती ज्ञानी (को) ऐसा राग था और जब रावण को जलाते हैं, तालाब की पाल पर — बड़ी पाल है (स्वयं बैठते हैं) रामचन्द्रजी और लक्ष्मण। कहो! मार डाला, उसके प्रति भी फिर ऐसा भाव! समकिती है, अनुभवी है, यह जरा पदवी के योग्य राग आ गया, राग-दुःख का वेदन हुआ। आहाहा!

यह शिष्य यहाँ पूछता है प्रभु! आहाहा! मेरा नाथ आत्मा ज्ञाताद्रव्य प्रभु, मेरी दृष्टि में आया है, मेरा भगवान आत्मा मेरे अनुभव में, अनुभव में जो वस्तु अनन्त गुण का पिण्ड है, उसका अनुसरण करके अनुभव हुआ है प्रभु मुझे, परन्तु मेरे स्वरूप में आचरण करने का मैं अभिलाषी हूँ। आहाहा! मेरी पर्याय में राग-द्वेष का आचरण है, इसलिए प्रभु! उसका त्याग और स्वरूप का आचरण कैसे हो? तो गुरु कहते हैं। आहाहा! जब सीताजी को ले जाते हैं, रावण नजदीक आता है... दूर रहना, छह महीने मेरे सामने देखना नहीं, समकिती... ऐ सुमेरुमलजी! सीताजी ज्ञानी, आत्मज्ञानी... आहाहा! पतिव्रता, रामचन्द्रजी के अतिरिक्त विकल्प नहीं किसी पति का, चाहे जो हो, आहाहा! रावण आता है ऐसे....

मेरा नाथ छह महीने में मेरी सम्हाल लेने न आवे फिर तू विचारना,.... आयेंगे। आहाहा! देखो, यह समकिती का भी अन्दर का आचरण। आहाहा!

उसमें हनुमानजी, हनुमान राजकुमार हैं न, वह राजकुमार है, हों! वानर नहीं, हों! वानर का तो उनकी ध्वजा में चिह्न था, वानर नहीं थे, तीन खण्ड में तो उनके जैसा किसी का रूप नहीं था — हनुमान ऐसे कामदेव थे। आहाहा! वह रामचन्द्रजी की अँगूठी है न, उसे लेकर सीता के पास जाते हैं। देखो, यह समकिती के आचरण का राग का भाव। आहाहा! सीताजी अँगूठी ऐसे देखती हैं। 'वनचर वीरा रे वधामणी, हे वीरा क्यां थकी लाव्यो ए अंगूठी मारा नाथ नी' यह समकिती। रामचन्द्रजी की थी और उनके जैसा तो कोई पुरुष उस समय नहीं था, वे बलदेव पुरुष थे 'ए अंगूठी मारा नाथ नी ए वीरा क्यां थकी लाव्यो, वनचर वीरा रे वधामणी' यह बधाई, यह अँगूठी लेकर आया मुझे बधाई दी। अब भगवान आयेंगे, अब रामचन्द्रजी आयेंगे। आहाहा! देखो, यह राग के विकल्प, आहाहा! फिर तो रामचन्द्रजी वहाँ जाते हैं, और (रावण को) मारते हैं। आहाहा!

समकिती के भी आचरण में भी राग का आचरण होता है। आहाहा! अव्रतभाव है न? अचारित्रभाव है न? आहाहा! तो प्रभु! अब तो मुझे मेरा आचरण करना है न नाथ! आहाहा! मेरी पर्याय में परभाव का आचरण तो है। मेरा स्वभाव परभावरूप हो — ऐसा नहीं है परन्तु पर्याय में विभावरूप, परद्रव्य के निमित्त से मेरी पर्याय में है। आहाहा! तो कहते हैं प्रभु! शिष्य को गुरु कहते हैं कि तेरा द्रव्यस्वभाव तो उसमें व्याप्त न होने से,.... द्रव्यस्वभाव जो है, उससे तो विभावरूप परिणमन नहीं होता। भगवान आत्मा, आहाहा! ज्ञान और आनन्द और शान्तरस का समुद्र प्रभु, अकषायस्वभाव का सागर नाथ, वह अकषायस्वभावस्वरूप अपने स्वभाव से कषाय में परिणमन नहीं होता। द्रव्यस्वभाव से नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? यह बातें बापू! यह तो अन्तर की बातें हैं भाई! क्या हो? अभी तो सब (मार्ग) गुप्त हो गया है — फेरफार; इसलिए लोगों को सत्य बात भी खोटी लगती है। यह तो एकान्त है... अरे प्रभु! सुन तो सही नाथ! यह तेरे चैतन्य के चमत्कार की कोई अलौकिक बातें हैं। आहाहा!

भाई! शिष्य को गुरु कहते हैं — **उनके अपने स्वभावभाव से व्याप्त न होने से**

पररूप जानकर,.... समकित दृष्टि ज्ञानी अनुभवी, राग और दया, दान तथा अव्रत आदि के भाव हैं, वह विभाव है; वह अन्य द्रव्य के निमित्त से स्वभावरूप पर्याय में हुआ है। मेरे स्वभाव से नहीं। समझ में आया? आहाहा! अपने स्वभावभाव से... अपने स्वभाव ज्ञान, दर्शन, आनन्द — ऐसे स्वभावभाव से व्याप्त न होने से... आहाहा! उस विकारी भावरूप अपने स्वभावभाव से व्याप्त नहीं होता, द्रव्यस्वभाव से वह व्याप्त नहीं होता। आहाहा! **पररूप जानकर,....** सम्यग्दृष्टि ज्ञानी-धर्मात्मा, वह राग-पुण्य-पाप का भाव को पररूप जानकर, मेरे द्रव्यस्वभाव से मैं व्याप्त नहीं होनेवाला आत्मा हूँ। आहाहा! समझ में आया? उस विकारी (भाव), परद्रव्य के स्वभाव से परिणमन है, उसे पररूप जानकर, धर्मात्मा... आहाहा! देखो! यह ज्ञानी पररूप जानकर... वेदन में रागादि आता है परन्तु वह मेरा स्वभाव नहीं है। मेरी पर्याय में है परन्तु मेरा स्वभाव नहीं है। आहाहा! **पररूप जानकर त्याग देता है।**

यह राग और विकार मेरा स्वभाव नहीं है। मेरे स्वभाव से मैं विभावरूप नहीं हुआ। यह परभाव है, मेरी पर्याय में, पर्याय की कमजोरी से, परन्तु मेरे द्रव्यस्वभाव से मैं विभावरूप परिणमन नहीं होनेवाला.... आहाहा! ऐसा **पररूप जानकर, त्याग देता है;....** अर्थात् उस रूप परिणमता नहीं है। आहाहा! ऐसा मार्ग बापू! आहाहा! देखो, यह प्रत्याख्यान! यह प्रत्याख्यान इसका नाम है। आहाहा! भाई! प्रत्याख्यान कोई अलौकिक चीज है, नाथ! आहाहा! प्रत्याख्यान, वह चारित्र की दशा है। उस अचारित्र की दशा का भाव, ज्ञानी ज्ञानपने में पररूप जानकर — यह पर है, मैं इसरूप नहीं परिणमता; इस प्रकार राग का अन्दर में त्याग करते हैं। आहाहा! **जो पहले जानता है....** कि पर है.... **वही बाद में त्याग करता है,....** पर है तो पररूप मैं नहीं होनेवाला। आहाहा! अरे ऐसी बात कहाँ? अन्दर अमृत का सागर उछलता है, उसमें से इसे अधिक अमृत के सागर के आचरण में जाना है न? जाना है न? उस शिष्य को यह कहते हैं। आहाहा!

आहाहा! देह कहाँ, वाणी कहाँ, मन कहाँ, कहीं वे तो पर में रह गये। स्त्री, कुटुम्ब, परिवार तो कहीं पर में रह गये। यहाँ तो पर्याय में; द्रव्यस्वभाव से व्याप्त नहीं होनेवाला मैं, पर्याय में परद्रव्य के निमित्त से विभावरूप परिणमन होता है, यह मैं जानता हूँ कि यह राग

है, क्योंकि इस राग की दिशा परतरफ है, परतरफ के लक्ष्य से राग होता है; अपने लक्ष्य से राग नहीं होता। अत: यह राग है, वह परलक्ष्य में उत्पन्न होनेवाला विभाव, वह परभाव है — ऐसा जानकर ज्ञान में एकाग्र हो जाता है, राग छूट जाता है। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा में स्थिर होते हैं। आहाहा! उस राग के आचरण में था, वह ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा ने जाना कि यह तो विभावरूप परभाव है, दु:खरूप दशा है, मेरी दशा नहीं; मेरे द्रव्यस्वभाव की दशा नहीं, आहाहा! परन्तु पर्याय में-मुझमें, आहाहा! आकुलता का वेदन है, परन्तु वह पर है। मेरे आनन्द के नाथ की-द्रव्यस्वभाव की वह चीज नहीं है। आहाहा! उसको जानकर, पर को पर जाना, उस समय ज्ञान (पर से) छूट गया। दृष्टि में से (पर से छूट गया) पर्याय में से और ज्ञानस्वरूपी भगवान ज्ञान में लीन हो गया। जो राग में जरा अस्थिरता थी, उस राग को छोड़कर स्थिर हो गया, इसका नाम प्रत्याख्यान है। ऐसी बात है।

बाहर से हाथ जोड़कर प्रत्याख्यान करो और यह करो... बापू! यह सब बातें झूठी हैं। भाई! तेरा मार्ग कोई अलग है। आहाहा! बाह्य से अपवास किया और यह किया, त्याग किया और यह हमारा त्याग है... अरे प्रभु! सुन तो सही! यह बाहर का त्याग तो अन्दर में है ही नहीं 'त्यागोपादान शून्यत्व शक्ति' क्या कहते हैं? भगवान आत्मा में अनादि से ऐसा एक गुण है कि पर का ग्रहण और त्याग तो उसमें है ही नहीं। रजकण, कर्म, परपदार्थ का ग्रहण और पर का त्याग, उससे तो प्रभु (आत्मा) शून्य है। समझ में आया? आहाहा! प्रभु! तेरा एक गुण ऐसा है 'त्यागोपादान शून्यत्व।' यह आहार-पानी का त्याग और आहार-पानी का ग्रहण, यह तेरी चीज में है ही नहीं। समझ में आया? आहाहा! झाँझरीजी! ऐसा मार्ग है भगवान! आहाहा! परम सत्य है प्रभु! आहाहा! अरे! इसे लोगों ने गड़बड़ कर दिया और यह तो निश्चय की बातें हैं... परन्तु बापू! सत्य ही यह है। निश्चय अर्थात् सत्य, व्यवहार तो आरोपित कथन है। यह छोड़ा और यह त्यागी हुआ, यह तो व्यवहार का — असद्भूत व्यवहार का कथन है, परन्तु वास्तव में तो त्याग इसको कहते हैं, आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द के नाथ में दृष्टि दी है, वहाँ आगे अन्दर स्थिरता करते, राग को जानते हुए कि यह राग तो पर है, इसरूप नहीं परिणमन करनेवाला मेरा द्रव्यस्वभाव है। आहाहा!

उस अपने स्वभाव में उग्ररूप से परिणमन करते हैं — स्वसंवेदन बल। स्वसंवेदन ज्ञान का वेदन, निर्विकल्प समाधि में होता है, उसका नाम प्रत्याख्यान कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

अब प्रत्याख्यान किसे कहते हैं? यह भी सुना न हो प्रभु! यह तो यह किया... यह किया... भगवान! आहाहा! भगवानरूप ही बुलाते हैं न? भगवान ज्ञाताद्रव्य कहा है न? (टीका का) पहला शब्द। आहा! जिसको पहले जाना वह त्याग देता है। त्याग देता है — ऐसा कहना भी निमित्त का कथन है। इसमें कर्तापना नहीं है, यह आगे कहेंगे। समझ में आया? आहाहा! राग का त्याग करता है, वह भी आत्मा में नाममात्र है। समझ में आया? वह रागरूप नहीं हुआ और आनन्दरूप हुआ, उसने राग का त्याग किया, यह तो कथनमात्र है; वस्तु में है नहीं। उस राग का त्याग क्या करना? राग को जानकर ज्ञान में स्थिर हुआ तो राग उत्पन्न नहीं हुआ, उसको राग का त्याग किया — ऐसा निमित्त से कथन है। आहाहा! यह कहेंगे।

इसलिए जो पहले जानता है.... आहा! एक दो लाईन में कितना अर्थ भरा है! और एक व्यक्ति कहता है — तुम समयसार की बहुत महिमा करते हो, मैंने तो पन्द्रह दिन में पढ़ डाला। बापू! पढ़ा भाई! पढ़ गया; मैं तो पढ़ गया था न! (समझ तो कहाँ?) तुम बहुत महिमा करते हो, बापू! इसकी एक-एक पंक्ति (अचिन्त्य)! आहाहा! वह समझने में बहुत कठिन लगे भाई! पर का अभ्यास और स्व का अनभ्यास अनादि का... यह कल आया था, अनादि का पर का अभ्यास, उसे मोड़ना वापस मुड़ना-गुलाँट खाना। आहाहा!

सम्यग्दृष्टि होने के बाद प्रत्याख्यान कैसे होता है? उसकी बात है। अर्थात् सम्यग्दृष्टि हुआ, इसलिए सर्व दोष का त्याग हो गया - ऐसा नहीं है। दृष्टि में सर्व दोष का त्याग है; पर्याय में सर्व दोष का त्याग नहीं है। आहाहा! वह सर्व दोष का त्याग,... वह सम्यग्दृष्टि, ज्ञानी, क्षायिक समकिती हो, आहाहा! भगवान तीर्थंकर हो, गृहस्थाश्रम में, वे भी जब णमो सिद्धाणं कहकर चारित्र अंगीकार करते हैं... वे पंच नमस्कार नहीं गिनते हैं। तीर्थंकर गृहस्थाश्रम में हैं, तब तक-वहाँ तक राग, पुण्य-पाप का आचरण, भोग का आचरण, राग का-दुःख का आचरण है। आहाहा! यह भगवान जब चारित्र अंगीकार करते हैं, शास्त्र में

ऐसा लेख है, णमो सिद्धाणं, बस! णमो सिद्धाणं करके स्वरूप में अन्दर उतर जाते हैं। आहाहा! तब उनको — तीर्थंकर को भी प्रत्याख्यान अर्थात् चारित्रदशा होती है। आहाहा!

इसलिए जो पहले जानता था, पहले जानता था कि यह राग पर है, वह जाननेवाला जाने कि यह राग पर है, पहले जानता था **वही बाद में त्याग करता है,....** आहाहा! उसमें जुड़ता नहीं है, स्वरूप में लीन होता है। आहाहा! भगवान! जैसे वह बिजली ऊपर से गिरती है और ताँबे का वायर होता है और बिजली उतर जाती है। आहाहा! इसी प्रकार भगवान आत्मा, अपना अनुभव और ज्ञान तो है, परन्तु गुरु कहते हैं — राग को तूने पर जाना, पर है तो स्वपने परिणमना और पररूप नहीं — ऐसा होकर ज्ञान, ज्ञान में परिणमता है तो राग छूट जाता है (उत्पन्न नहीं होता) और राग छोड़ता है — ऐसा कहना, वह भी तेरे लिए तो नाम कथन है। आहाहा!

देखो तो गाथा! यह नवरात्रि का पहला दिवस है, नवरता कहलाता है न? नवरता-नौरता, नहीं नवरात? आहाहा! यह भगवान के सामने लड़ाई चली, राम के सामने, आहाहा! रावण का जैसे सिर काट डाला लक्ष्मण ने, मूल तो लक्ष्मण ने। वासुदेव है और यह तो बलदेव है — रामचन्द्रजी तो बलदेव हैं, उनकी पदवी ऊँची है, वासुदेव की, संसार अपेक्षा से। आहाहा! यहाँ कहते हैं — आतमराम! भगवान जहाँ अपने स्वरूप का अनुभव हुआ, वह आतमराम अपनी रमणता में चढ़ता है (तो) राग की उत्पत्ति नहीं होती, उसका नाम प्रत्याख्यान है। आहाहा! अन्तर आनन्द में रमता है - भगवान आत्मा। वह (पहले) थोड़ा आनन्द था, उसमें रमता था। अब विशेष आनन्द प्रगट करके रमता है। आहाहा! रमे तब राग का-दुःख का भाव का त्याग हो गया। अभाव हो गया, उसे त्याग किया — ऐसा कहा जाता है।

आहाहा! वरना तो भगवान आत्मा में एक अभावभाव का स्वभाव है। अरेरे! आहाहा! क्या कहते हैं? सैंतालीस शक्ति हैं न? उसमें आत्मा में एक अभाव नाम का गुण अनादि-अनन्त है। उस अभाव-स्वभाव के कारण, राग के अभावरूप परिणमन हो गया है। समझ में आया? आहाहा! अभाव-राग के अभाव-स्वभावरूप अभाव (गुण) अपने में है। रागरूप नहीं परिणमित होना — ऐसा अभाव-स्वभाव अपने में है। आहाहा! अरे!

अब ऐसी बातें, इसमें कितनी याद रखना ? एक दिन रामजीभाई नहीं कहते थे ? प्रभु ! तेरे मार्ग की रीति तो यह है भाई ! आहाहा ! यह जन्म-मरण के दुःख का नाश करने को प्रभु ! आहाहा ! 'भव भय से डरिचित्त' होकर। आहाहा !

भाई ! कठिन परन्तु करना पड़ेगा नाथ ! समझ में आया ? आहाहा ! जो जानता है, जाननेवाले ने-भगवान ने जाना कि यह राग पर है; जाननेवाला जाने और जाननेवाला पररूप न हो और पर के अभावरूप, स्वभावरूप परिणमित हो, इसका नाम त्याग और प्रत्याख्यान कहा जाता है - ऐसी बातें हैं प्रभु ! क्या हो ? आहाहा ! परमसत्य परमात्मा ने इस प्रकार कहा है, बाकी सब फिर उल्टी दृष्टि से बातें करें, वे नहीं चाहे जो हो। अब एक व्यक्ति तो ऐसा कहता था — इन्द्रलालजी थे जयपुर में, जयपुर में न ? इन्द्रलालजी, (वे कहते थे) दिगम्बर में जन्में वे सब भेदज्ञानी तो हैं ही; अरे प्रभु ! क्या करता है तू ? चले गये बेचारे ! मर गये। (कहते थे) दिगम्बर में जन्में वे सब तो भेदज्ञानी हैं, उन्हें अब राग का प्रत्याख्यान करना और चारित्र लेना, बस यह करना है। अरे भाई ! भगवान ! तूने क्या किया ? भाई ! आहाहा !

दिगम्बर में (जन्मा) क्या परन्तु दिगम्बर साधु अनन्त बार हुआ 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायौ' परन्तु वह तो राग की क्रिया है। ऐसी क्रिया तो अभी है ही नहीं, ऐसी राग की क्रिया, शुभ। मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायौ परन्तु प्रभु ! आत्मज्ञान बिना (लेश सुख न पायो)। भगवान आनन्द का नाथ प्रभु के सन्मुख तू नहीं हुआ; उससे विमुख होकर तूने राग की क्रिया की। समझ में आया ? दिगम्बर में जन्म तो क्या, दिगम्बर साधु हो तो भी मिथ्यादृष्टि है, (यदि) राग की क्रिया को अपनी मानता है तो। पाटनी जी ! ऐसी बात है प्रभु ! आहाहा !

भगवान ज्ञाताद्रव्य... आहाहा ! आचार्यों की भाषा तो देखो ! **भगवान ज्ञाता-द्रव्य...** पहला शब्द यह लिया है न ? यही 'भगवत् ज्ञातृद्रव्यं' आहाहा ! पामर को भगवान मानना कठिन पड़ता है। यह भगवानस्वरूप जाना हुआ होने पर भी, जब तक पर्याय में पर का, विकार का परिणमन है, तब तक वह स्वरूप का आचरण नहीं है। सम्यग्दृष्टि को आंशिक स्वरूपाचरण हुआ है परन्तु जिसे चारित्र कहें, वैसा आचरण नहीं है। अतः जो

चारित्र शब्द कहे वह तो स्वरूप जो आनन्द का नाथ है, उसको जो जाना और माना, उसमें (उग्र रूप से) चरना-आनन्द में रमना। आहाहा! स्वसंवेदन में अतीन्द्रिय आनन्द का ग्रास लेना, अतीन्द्रिय आनन्द का ग्रास लेना। समझ में आया?

भाई ने दृष्टान्त दिया है न, सोगानीजी ने? गन्ने का रस (का दृष्टान्त दिया है) गटक गटक गटक... पीते हैं न? वैसे ही धर्मात्मा स्वरूप की दृष्टि के उपरान्त स्वरूप में स्थिरता करने को गटक-गटक आनन्द को पीते हैं। अरेरे! यह क्या बात! आहाहा! यह कहते हैं। जो जानता है, वही राग का त्याग करता है; **अन्य कोई त्याग करनेवाला नहीं है — इस प्रकार....** अभी तो इस प्रकार **आत्मा में निश्चय करके,....** देखो! आहाहा! यह क्या कहा? अभी तो प्रत्याख्यान अब होगा परन्तु इस प्रकार पहले निश्चय करते हैं कि मैं ज्ञाता-द्रव्यस्वभाव, इस विभावरूप स्वभाव से परिणमनेवाला नहीं हूँ। पर्याय में विभाव है तो वह तो पर के निमित्त के अवलम्बन से हुआ है, वह दुःखदायक है। मुझे तो मेरा आचरण करना है तो जिसे पर जाना,.... पर से पृथक् रहकर जाना, उस पर को पृथक् कर देता है। आहाहा! समझ में आया? अब ऐसी बात!

अरे भाई! दुःखी, दुःखी, यह दुःखी प्राणी है, भाई! आहाहा! जिसके दुःख देखकर... शास्त्र में तो ऐसी बात है, आहा! तेरा मरण हुआ और तेरी माता की आँख में से आँसू आये, वे आँसू इतने हैं कि समुद्र भर जाये। बापू! तेरा दुःख देखा नहीं जाता, भाई! आहाहा! यह अभी एक बार कहा नहीं था? लाठी में एक बहिन-कन्या थी, अठारह वर्ष की उम्र लाठी! पूरे शरीर में शीतला,.... शीतला क्या कहते हैं? चेचक। दो वर्ष का विवाह, उसके पति को दूसरी, उसका पति पहली (से) विवाह किया तो वह मर गयी। इसे शीतला हुई और खाट में पड़ी थी और दाने-दाने कीड़े, कीड़े, दाने-दाने कीड़े-कीड़े... ऐसी करवट बदले, तब हजारों कीड़े ऐसे खिरें और दूसरी ओर घूमें तो ऐसे गिरें। मर जाये, नये उत्पन्न हों। उसकी माँ को (वह) कहती है - माँ! मैंने ऐसे पाप इस भव में नहीं किये, यह क्या आया? आहाहा! सहन नहीं किया जाता, खाट पर जलन-जलन, दाने-दाने कीड़े परन्तु वह पीड़ा भी नरक के समक्ष तो अनन्तवें भाग की है। लोगों को कहाँ पता है भाई! नरक की पीड़ा जो पहले नरक में है, उससे अनन्तवें भाग है। उसकी देह छूट गयी, रोते-

रोते (देह छूट गयी)। आहाहा! और पागल (पशु) काटता है न? पागल कुत्ता — क्या कहते हैं तुम्हारे? (श्रोता : पागल कुत्ता) पागल कुत्ता काटता है। एक कन्या को काटा था, बारह वर्ष की जवान कन्या, उसमें पागल कुत्ता... अपने प्रेमचन्दभाई हैं, लाठी-राणपुरवाले, उनके मित्र की लड़की थी, मित्र स्वर्गस्थ हो गये थे, भाईबन्धु की कन्या-काका मुझसे सहन नहीं होता। हवा करो तो सहन नहीं होता, सोना सहन नहीं होता, पानी पिया नहीं जाता, प्रभु! क्या वेदना? कुत्ता, पागल कुत्ता, पागल, बारह वर्ष की जवान लड़की और पीड़ा... पीड़ा... पीड़ा। देह छूट गयी, बापू! इस पीड़ा से अनन्तगुनी पीड़ा तुझे नरक में हुई है। आहाहा! उस पीड़ा के परमाणु को छोड़ना हो तो नाथ! तो यह उपाय तुझे करना पड़ेगा। है? आहाहा!

विशेष कहेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)